THE TIMES OF INDIA

Date: 26-01-26

Judging Judges

SC judge calls out SC collegium in a timely reminder that collegium must be seen to be independent and accountable

TOI Editorials

In saying that the biggest threat to judicial freedom is from within, Supreme Court judge Ujjal Bhuyan has swung muchneeded attention to a red flag that's been fluttering in the breeze for some time, especially the apparently harmonious manner in which political-executive seems to influence judges' appointments, however much below the radar. Justice Bhuyan, during a lecture, highlighted Supreme Court collegium's decision to follow Centre's suggestion and change the transfer order of a senior judge of Madhya Pradesh high court, moving him to Allahabad HC, as Centre desired, instead of to Chhattisgarh HC, per collegium's decision. The reason was officially recorded by the collegium itself. As Justice Bhuyan said, so much for judiciary's independence. His legitimate concerns about top court's own appetite/mettle for independence are timely.

Ironically, one must welcome SC collegium somewhat keeping its word, from 2021, to disclose reasons for its recommendations while making appointments, in pursuit of "transparency". Only, removing the cloak of secrecy exposed govt's influence on judges' appointments. Of course, it is not surprising. It would be naive to pretend otherwise. What is stark though is that SC collegium should allow for this. GOI has, not infrequently, slid into cold storage several collegium decisions on transfers, keeping judges in limbo. This has caused SC anguish and triggered much heartburn and debate on govt attempts to influence, go-slow or expedite, transfers. SC has aggressively pushed back against legislative attempts to expand the process of recruiting and postings of judges, to include members of the executive and legislature. To the extent that it struck down the National Judicial Appointments Commission in 2015 to preserve the opaque collegium system, arguing only judges can secure judiciary's independence. "It is difficult to hold that the wisdom of appointment of judges can be shared with the political-executive," said an individual judgment from the five-judge Constitution bench that set aside the law.

Judiciary has to be safeguarded from executive interference is constitutional principle – the idea is to not step on each other's toes, but to keep the other on its toes. But if SC collegium is to toe the executive's line, it only cedes its accountability and the executive risks transgressing the legitimate sphere of the judiciary. This further erodes public trust in both. Justice Bhuyan has brought into focus the myth and reality of judiciary's independence. The grandest of rhetoric is no match for demonstrated independence.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 27-01-26

Why India Should Join Pax Silica High Table

ET Editorial

As global cooperation on advanced technologies gathers momentum, India can't afford to remain outside the rule-making phase. It should join the US-led Pax Silica initiative once formally invited. The prospect of such an invitation has understandably raised sovereignty concerns in New Delhi, rooted in the realities of today's geopolitical climate and India's preference for strategic autonomy. Yet, declining the offer could be read by the Trump administration as a diplomatic snub, with consequences ranging from higher tariffs to a potentially imperilled trade deal.

New Delhi is aware of the impact of Beijing's export restrictions on critical minerals and the vulnerabilities such leverage creates. Yet, joining Pax Silica must be about more than replacing one set of dependencies with another. India must advance its domestic industrial policy on semiconductors, critical minerals and AI, deepen engagement with a variety of partners — some of whom are Pax Silica members — and ensure that political commitments translate into projects. Collaborations such as the India-France partnership, along with trilateral arrangements involving the UAE, the India-Australia critical minerals partnership, and the Australia-Canada-India Technology and Innovation Partnership, provide both a safety net and leverage for collective bargaining.

Geopolitical fractures and supply chain vulnerabilities have created a strategic imperative for cooperation across AI, semiconductors and critical minerals. Countries such as India are central to ensuring that the developing world is not sidelined in this new race. To play that role well, India must be present where rules and standards are set — and use that seat strategically to represent voices that are too often left out.

दैनिक जागरण

Date: 26-01-26

विकसित गणतंत्र

संपादकीय

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मु ने अनेक स्वतंत्रता सेनानियों का स्मरण करते हुए जिस तरह यह कहा कि सभी भारतवासी जीवंत गणतंत्र को शक्तिशाली बना रहे हैं, उसका सीधा संदेश यही है कि देश की प्रगति में हर किसी का योगदान होता है। यह उनके संबोधन से तब स्पष्ट भी हुआ, जब उन्होंने सेनाओं के साथ अर्धसैनिक बलों एवं पुलिस के जवानों से लेकर स्वास्थ्यकर्मियों, शिक्षकों, विज्ञानियों, इंजीनियरों समेत किसानों, सफाईमित्रों आदि का उल्लेख किया।

निश्चित रूप से किसी भी देश के विकास में उसके सभी नागरिकों का योगदान आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। भारत ने गणतंत्र के रूप में पिछले 76 वर्षों में जो भी प्रगति की है, उसके लिए सभी को गर्व होना चाहिए। यह एक तथ्य है कि तमाम समस्याओं और चुनौतियों के बावजूद भारत ने एक ओर जहां स्वयं को एक सफल गणतंत्र सिद्ध किया है, वहीं दूसरी ओर विश्व के प्रमुख राष्ट्र के रूप में भी उभारा है। आज अंतरराष्ट्रीय समुदाय में भारत की स्थिति कहीं अधिक सुदृढ़ है। इसी सुदृढ़ता के कारण 2047 तक देश को विकसित राष्ट्र बनाने का स्वप्न देखा जा रहा है।

इस स्वप्न को साकार करने के लिए संकल्पित होने का यह सही समय है। यह संतोष का विषय तो है कि देश सही दिशा में बढ़ता हुआ दिखने के साथ विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियां भी प्राप्त कर रहा है, लेकिन इसे लेकर सजग रहने की भी आवश्यकता है कि विकसित भारत के लक्ष्य को पाने के लिए अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति कैसे हो, इसकी चिंता शासन-प्रशासन के लोगों के साथ आम जनता को भी करनी होगी।

यह स्वाभाविक है कि शासन एवं प्रशासन की ओर से देश को आगे ले जाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में जो कदम उठाए जा रहे हैं, उनका राष्ट्रपति ने अपने संबोधन में विस्तार से उल्लेख किया, लेकिन इसके बाद भी यह नहीं कहा जा सकता कि देश एकजुट होकर उस लक्ष्य को पाने के लिए संकल्प के साथ आगे बढ़ रहा है, जिसकी चर्चा प्रधानमंत्री की ओर से बार-बार की जा रही है। यदि देश को वास्तव में 2047 तक विकसित राष्ट्र बनना है तो सरकारी कामकाज के तौर-तरीकों में मूलभूत परिवर्तन लाना आवश्यक है।

यह ठीक नहीं कि जिन समस्याओं से हमें अब तक मुक्ति पा लेनी चाहिए, वे पीछा नहीं छोड़ रही हैं। यह आभास गहराई से किया जाना चाहिए कि नौकरशाही का भ्रष्टाचार, वायु एवं जल प्रदूषण में वृद्धि, शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर उठते प्रश्न और शहरी ढांचे में अपेक्षित सुधार के अभाव आदि ने हमारी प्रगति को बाधित कर रखा है। यह समझा जाना चाहिए कि इन बाधाओं को दूर करके ही विकसित देश के सपने को साकार किया जा सकता है।

Date: 26-01-26

हम भारत के लोग और हमारे दायित्व

राजनाथ सिंह, (लेखक रक्षामंत्री हैं)

देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने 16 मई, 1952 को पहली लोकसभा को संबोधित करते हुए संसद सदस्यों को उनके लोकतांत्रिक दायित्वों की गंभीरता का स्मरण कराया था। उन्होंने स्पष्ट किया था कि संविधान लागू होते ही राष्ट्रपति के निर्वाचन और पहले आम चुनाव के साथ स्वतंत्र भारत की लोकतांत्रिक यात्रा का प्रथम चरण पूरा हो चुका है और देश अब ऐसे दूसरे चरण में प्रवेश कर रहा है, जिसमें कोई विराम नहीं होगा।

वस्तुत:, संविधान और लोकतंत्र की पूरी व्यवस्था के केंद्र में 'हम भारत के लोग' हैं और उनके सामाजिक और आर्थिक उत्थान का ही ध्येय है। यह ध्येय सदैव भारत की राजनीतिक चेतना का अभिन्न अंग रहा है। प्राचीन भारत में 'योग-

क्षेम' का सिद्धांत व्यक्ति के कल्याण और सुरक्षा से जुड़ा हुआ था। महात्मा गांधी के सर्वोदय के विचार के केंद्र में भी सभी का उत्थान है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' और 'अंत्योदय' के सिद्धांत भी व्यक्ति के संपूर्ण विकास और वंचित वर्गों के उत्थान पर केंद्रित हैं। विकास के केंद्र में नागरिकों को रखने की यह परंपरा वर्तमान में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की नीति 'सबका साथ, सबका विकास' में भी निहित है। वर्ष 2014 से प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में जनता केंद्रित शासन व्यवस्था का यह सोच सरकार की नीतियों और कार्यों में स्पष्ट दिखता है। इससे संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति को गति और शक्ति मिली है।

संविधान में उल्लिखित नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत राज्य पर श्रमिकों के लिए मानवीय और न्यायपूर्ण परिस्थितियां सुनिश्चित करने का दायित्व है। इसी दिशा में केंद्र सरकार ने हाल में ही 29 श्रम कानूनों को चार श्रम संहिताओं में पिरोया है। यह श्रमिकों के लिए बेहतर आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की दिशा में एक बड़ा कदम है। संविधान राज्य को निर्देश देता है कि वह आर्थिक असमानताओं को कम करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहे।

इस उद्देश्य की पूर्ति तभी संभव है, जब समाज के प्रत्येक वर्ग को शिक्षा और रोजगार के समान अवसर उपलब्ध हों। पिछले कुछ वर्षों में लिए गए कई महत्वपूर्ण नीतिगत फैसलों के चलते आज अवसरों की यह समानता हर स्तर पर बढ़ी है। इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण स्टार्टअप इंडिया जैसी पहल है, जिसके हाल ही में दस वर्ष पूरे हुए हैं। इसके अंतर्गत प्रदान किए जाने वाले नीतिगत सहयोग, आर्थिक मदद और मेंटरशिप के माध्यम से आज किसी भी व्यक्ति के लिए कोई उद्योग शुरू करना बहुत सुगम हुआ है।

आर्थिक प्रगति तभी समावेशी बनती है, जब अवसरों की समानता हो। यह आय असमानता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पिछले 12 वर्षों में सभी आर्थिक नीतियां इसी विचार से प्रेरित रही हैं। इसी का परिणाम है कि आज भारत की आर्थिक प्रगति का लाभ प्रत्येक नागरिक तक समान रूप से पहुंच रहा है। विश्व बैंक के 'स्प्रिंग 2025 पावर्टी एंड इक्विटी ब्रीफ' के अनुसार भारत ने पिछले दशक में 17.1 करोड़ लोगों को अत्यधिक गरीबी की रेखा से बाहर निकाला है। सामाजिक रूप से पिछड़े व्यक्तियों के साथ-साथ आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को भी आरक्षण का लाभ दिया गया है।

केंद्र सरकार ने समावेशी विकास के साथ-साथ लोगों के लिए गरिमापूर्ण जीवन और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने पर भी निरंतर ध्यान केंद्रित किया है। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 और मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2019 जैसे कानूनों के माध्यम से सामाजिक न्याय को और मजबूती मिली है। गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करने की इसी भावना का एक अच्छा उदाहरण स्वच्छ भारत मिशन भी है। जनकल्याण की यही भावना प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना' और 'प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना' जैसी पहलों में भी साफ दिखती है। अन्न योजना के तहत 80 करोड़ से अधिक लोगों को निःशुल्क खाद्यान्न उपलब्ध कराया जा रहा है।

जब प्रधानमंत्री मोदी ने 'आत्मनिर्भर भारत' का आह्वान किया था, तो वह केवल अर्थव्यवस्था के स्तर तक ही सीमित नहीं था, बल्कि नागरिकों के भीतर आत्मनिर्भरता की भावना बढ़ाने का भी प्रयास था। इसलिए मुद्रा योजना और स्किल इंडिया मिशन जैसी पहलों के माध्यम से नागरिकों को स्वावलंबी और उद्यमशील बनाने पर बल दिया गया है। इन योजनाओं के केंद्र में आत्मनिर्भर नागरिक बनाना है, जो आत्मनिर्भर भारत का आधार भी बन रहे हैं।

इसी क्रम में आयुष्मान भारत योजना एक महत्वपूर्ण पहल साबित हुई है। इससे आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को बहुत लाभ हुआ है, जो संसाधनों के अभाव में अच्छी स्वास्थ्य सेवा से वंचित थे। इसी तरह जन-धन योजना ने बड़ी संख्या में नागरिकों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़कर वित्तीय सुरक्षा प्रदान की है। नारी शक्ति वंदन अधिनियम के माध्यम से लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रविधान किया गया है। इस अधिनियम में लोकतंत्र के तीनों सिद्धांत सशक्त अभिव्यक्ति पाते हैं, क्योंकि विधायी संस्थाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ने से संप्रभुता का सामाजिक आधार तो बढ़ेगा ही और नीति-निर्माण भी ज्यादा समावेशी होगा।

लोकतांत्रिक सिद्धांतों के मूल में समाहित जन-कल्याण एक सतत दायित्व है, जिसे हर पीढ़ी को अपने समय में निभाना पड़ता है। गणतांत्रिक व्यवस्था की मजबूती सिर्फ इस बात पर ही निर्भर नहीं है कि उसकी संस्थाएं कितनी मजबूत और दीर्घजीवी हैं, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि शासन व्यवस्था जनता के जीवन में कैसा बदलाव लाती है। हमें यह स्मरण रखना है कि भारतीय गणतंत्र की यात्रा सतत जारी रहनी चाहिए। यह हमारी जिम्मेदारी भी है। यह 77वां गणतंत्र दिवस सिर्फ इस दायित्व को स्मरण करने का ही अवसर नहीं है, बल्कि उससे आगे बढ़ कर यह संकल्प लेने का भी है कि हम भारत के लोग अपने लोकतांत्रिक और गणतांत्रिक मूल्यों को और अधिक गहराई से आत्मसात करें, उन्हें आचरण में उतारें और सुनिश्चित करें कि शासन की हर दिशा और हर निर्णय के केंद्र में जनता और उसका कल्याण ही सर्वोपरि रहे।

Date: 27-01-26

यूजीसी के नये नियम

संपादकीय

इससे बड़ी विडंबना और कोई नहीं कि उच्च शिक्षा संस्थानों में भेदभाव रोकने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी की ओर से लागू किए गए नए नियम इस कारण निशाने पर हैं कि वे बदले की कार्रवाई का जरिया बन सकते हैं। इसकी बड़ी वजह नए नियमों में भेदभाव को स्पष्ट रूप से परिभाषित न किया जाना तो है ही, झूठी शिकायत करने वालों के खिलाफ किसी तरह की कार्रवाई न करने का प्रविधान भी है। चूंकि इन नियमों को लेकर हो रहे विरोध का दायरा बढ़ता जा रहा है और विरोध करने वालों में सत्तारूढ़ भाजपा के नेता भी हैं, इसलिए केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने इन पर नए सिरे से विचार-विमर्श शुरू कर दिया है।

इसी के साथ इस पर राजनीति भी शुरू हो गई है और इसके तहत यूजीसी के नए नियमों को सामान्य बनाम अन्य के रूप में रेखांकित करने की कोशिश की जा रही है। इस क्रम में कुछ भ्रम भी फैलाए जा रहे हैं। यूजीसी के नए नियमों के अनुसार सभी शिक्षा संस्थानों को समानता अवसर केंद्र बनाने होंगे,

जिनमें एससी-एसटी के साथ ओबीसी वर्ग के छात्र, कर्मचारी और शिक्षक भी अपने खिलाफ जातिगत आधार पर हो रहे भेदभाव की शिकायत कर सकते हैं। पहले के नियमों में केवल एससी-एसटी वर्ग के छात्र ही शामिल थे।

यूजीसी के नए नियमों के तहत नस्ल, पंथ, क्षेत्र, जेंडर, दिव्यांगता आदि के आधार पर भी किए जाने वाले भेदभाव के खिलाफ शिकायत की जा सकती है। विरोधियों का तर्क है कि इन आधारों पर तो किसी भी वर्ग के छात्र, कर्मचारी या शिक्षक के खिलाफ भेदभाव हो सकता है। चूंकि यह तर्क निराधार नहीं, इसलिए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि नए नियम केवल एससी, एसटी, ओबीसी वर्गों के लिए ही नहीं हैं। आखिर नए नियमों में यह प्रविधान शामिल करने में क्या कठिनाई है कि किसी भी वर्ग का छात्र, कर्मचारी या शिक्षक अपने खिलाफ भेदभाव की शिकायत कर सकता है?

ऐसे किसी प्रविधान के न होने से यह ध्वनित हो रहा है कि भेदभाव तो केवल सामान्य वर्ग के लोग ही करते हैं। क्या इस धारणा को सही कहा जा सकता है? यूजीसी के नए नियमों को लेकर यह भ्रम भी दूर किया जाए कि समानता अवसर केंद्रों के सदस्य केवल आरक्षित वर्गों के लोग ही होंगे। इस सबके साथ ही सबसे अधिक आवश्यक यह है कि नए नियमों में झूठी शिकायत करने वालों को हतोत्साहित या फिर आवश्यक हो तो दंडित करने के भी उपाय किए जाएं, ताकि ऐसी शिकायतें न की जा सकें।

इसकी अनदेखी न की जाए कि ऐसे कई कानून हैं, जिनका दुरुपयोग बढ़ता जा रहा है। इनमें एससी-एसटी उत्पीड़न के साथ दहेज और यौन हिंसा रोधी कानून प्रमुख हैं। यह ठीक नहीं कि समानता कायम करने वाले नियम समानता के ही सिद्धांत की अनदेखी करते दिखें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 26-01-26

गणराज्य का सफर

संपादकीय

वर्ष 2025 में भारत ने अपने संविधान को अपनाने के 75 साल का जश्न मनाया। इसने राष्ट्र को एक साथ आने का अवसर प्रदान किया ताकि अब तक की यात्रा का आकलन किया जा सके और आगे आने वाली चुनौतियों पर चर्चा की जा सके। भारत जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है, उनकी प्रकृति बीते वर्ष में काफी बदल गई है, विशेष रूप से उसके बाहरी संबंधों में। वास्तव में, भारत अकेला नहीं है और इस वर्ष का गणतंत्र दिवस समारोह एक तरह से बदली हुई परिस्थितियों और उनके प्रति प्रतिक्रिया को दर्शाता है। यूरोपीय संघ के नेता एंटोनियो कोस्टा और उर्सुला वॉन डेर लेयेन आज के समारोह में मुख्य अतिथि होंगे। यह उम्मीद है कि इस सप्ताह भारत और यूरोपीय संघ मुक्त व्यापार समझौते को अंतिम रूप देंगे।

पिछले कई महीनों में, विश्व की सबसे बड़ी शक्ति अमेरिका की नीतियों और कार्रवाइयों ने वैश्विक व्यवस्था की नींव को चुनौती दी है। इससे न केवल यह धारणा टूट गई है कि अमेरिका युद्धोत्तर वैश्विक व्यवस्था का बचाव करेगा, जिसका

वह प्रमुख वास्तुकार था, बल्कि यह स्वयं उसके लिए सबसे बड़ा जोखिम भी बन गया है। अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप का ग्रीनलैंड पर कब्जे का जुनून इसका ताजा उदाहरण है।

यद्यपि ट्रंप ने अपने दावोस भाषण में बयानबाजी को कुछ कम किया लेकिन यूरोपीय और अन्य विश्व नेताओं के लिए यह स्पष्ट हो चुका है कि अमेरिका व्यापार या सुरक्षा मामलों में अब एक विश्वसनीय साझेदार नहीं रहा। इसलिए, भारत और यूरोपीय संघ के बीच संभावित समझौता महत्त्वपूर्ण है, और यह कहना उचित होगा कि वर्तमान वैश्विक वातावरण ने इसकी तात्कालिकता को और बढ़ा दिया है।

अमेरिका ने भारत को अलग तरह से निशाना बनाया है और रूसी तेल के आयात के बहाने ऊंचे शुल्क लगाए हैं। भले ही भारत-यूरोपीय संघ मुक्त व्यापार समझौता कुछ संवेदनशील क्षेत्रों को अपने दायरे से बाहर रखे, यह दोनों पक्षों के लिए एक बड़ी उपलब्धि होगी। ऐसी रिपोर्ट हैं कि यूरोपीय संघ के कार्बन सीमा समायोजन तंत्र जैसे मुद्दों को भी संबोधित किए जाने की संभावना है। हालांकि भारत की भागीदारी केवल व्यापार तक सीमित नहीं है। यूरोप भी रक्षा क्षमताओं का निर्माण कर रहा है, और इस प्रयास में भारत एक साझेदार हो सकता है।

भारत-यूरोपीय संघ शिखर सम्मेलन इस क्षेत्र में सहभागिता को आगे बढ़ा सकता है, जिससे परस्पर लाभ होंगे। भारत का गहरा हित नियम-आधारित वैश्विक व्यवस्था की रक्षा करने में है, और उसे उन व्यवस्थाओं का हिस्सा होना चाहिए जो इस दिशा में काम करने की इच्छुक हैं।

यद्यपि नई वैश्विक व्यवस्था के अनुरूप ढलने के लिए, भारत को विभिन्न क्षेत्रों में अपनी तैयारी को सुधारने की आवश्यकता होगी। एक गणराज्य के रूप में अपनी गहराई और विविधता का लाभ उठाना होगा। देश को अपनी प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार करना होगा और आर्थिक तथा सामाजिक परिणामों में सुधार के लिए समायोजन करना होगा। यह 1947 तक विकसित देश बनने की संभावनाओं को भी बढ़ाएगा। भारत को विकास के सभी पहलुओं में सुधार की आवश्यकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि चीज़ें बेहतर नहीं हो रही हैं, बल्कि यह है कि गति को उल्लेखनीय रूप से तेज करने की आवश्यकता है।

उदाहरण के लिए, भारत ने पिछले कुछ वर्षों में भौतिक और डिजिटल अधोसंरचना के निर्माण में अत्यंत अच्छा प्रदर्शन किया है, जिससे उत्पादक क्षमता में सुधार हुआ है। सरकार भी विनियमन हटाने पर काम कर रही है। यदि इसे सही ढंग से किया जाए, तो यह आने वाले वर्षों में विकास का सबसे बड़ा प्रेरक बन सकता है। कुल मिलाकर, इस बात पर बहुत कम बहस है कि भारत क्या चाहता है और उसे क्या करना चाहिए। वास्तविक मुद्दा यह है कि वह आगे कैसे बढ़ता है। प्रतिकूल वैश्विक वातावरण में, भारत को शीघ्र ही अपनी राह खोजनी होगी।

जनसत्ता

Date: 27-01-26

सहयोग की राह

संपादकीय

बदलते दौर में भू-राजनीतिक उथल-पुथल के बीच भारत अपनी आर्थिक और रणनीतिक साझेदारी पर बढ़ाने के लिए विभिन्न देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौते करने की राह पर आगे बढ़ रहा है। इसी क्रम में अब भारत और यूरोपीय संघ के बीच ऐतिहासिक समझौता होने वाला है, जिसकी घोषणा द्विपक्षीय शिखर सम्मेलन में किए जाने की संभावना है। इसके तहत रक्षा क्षेत्र, समुद्री सुरक्षा एवं आतंक के खिलाफ साझा मोर्चेबंदी, भारतीय और यूरोपीय नागरिकों की आसान आवाजाही तथा वस्त्र उद्योग एवं प्रौद्योगिकी जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सहयोग के नए द्वार खुलेंगे। यह समझौता इसलिए भी अहम होगा, क्योंकि माना जा रहा है कि इससे अमेरिका की शुल्क नीति के प्रभाव से निपटने के लिए भारत और यूरोपीय देशों के बीच साझा एवं व्यापक दृष्टिकोण विकसित होगा अनुमान है कि इस समझौते से दो अरब लोगों का एक ऐसा बाजार बनेगा, जो वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद का लगभग एक चौथाई हिस्सा होगा। इससे न केवल भारत के निर्वात को गति मिलेगी, बल्कि वहां के पेशेवरों के लिए यूरोपीय देशों में रोजगार पाने का रास्ता भी सुगम हो जाएगा। इसमें दोराय नहीं कि अमेरिका की ओर से भारत पर पचास फीसद शुल्क लगाए जाने के बाद देश का निर्यात कारोबार प्रभावित हुआ है। नतीजतन, भारत अपने उत्पादों के लिए दुनिया के विभिन्न देशों में वैकल्पिक बाजार तलाशने के हर संभव प्रयास में जुटा है। हाल ही में भारत ने न्यूजीलैंड के साथ मुक्त व्यापार एवं व्यापक आर्थिक साझेदारी समझते को अंतिम रूप दिया है। इससे पहले ब्रिटेन और ओमान के साथ व्यापार समझौते किए गए थे। यूरोपीय संघ के साथ भारत ने मुक्त व्यापार समझौते के लिए बातचीत पहली बार वर्ष 2007 में शुरू की थी, लेकिन कुछ मसलों पर आपसी सहमति न बनने के कारण वर्ष 2013 में बातचीत स्थगित कर दी गई थी जुन 2022 में बातों को फिर से आगे बढ़ाया गया, जो निर्णायक रही अंतरराष्ट्रीय व्यापार से जुड़े जानकारों का मानना है कि वह ऐतिहासिक मुक्त व्यापार समझौता कई क्षेत्रों में द्विपक्षीय संबंधों को और मजबूत करने में गुणात्मक बदलाव लाएगा।

माना जा रहा है कि शिखर सम्मेलन में मुक्त व्यापार समझौते को मंजूरी देने के अलावा दोनों पक्ष रक्षा ढांचागत समझौता और एक रणनीतिक एजेंडा भी प्रस्तुत करेंगे। गौरतलब है कि भारत और यूरोपीय संघ वर्ष 2004 से रणनीतिक साझेदार रहे हैं। प्रस्तावित सुरक्षा एवं रक्षा साझेदारी दोनों पक्षों के बीच सहयोग को और गहरा करने में सहायक होगी। इससे रक्षा क्षेत्र में आपसी तालमेल बढ़ेगा और भारतीय कंपनियों के लिए यूरोपीय संघ के 'सेफ' (सिक्योरिटी एक्शन फार यूरोप) कार्यक्रम में भागीदारी के रास्ते खुलेंगे। विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक समझौते से देश के वर निर्यात को भी प्रोत्साहन मिलने की उम्मीद है। यूरोपीय संघ दुनिया का सबसे बड़ा परिधान बाजार है। वर्तमान में भारत इस क्षेत्र में 4.5 अरब डालर से अधिक मूल्य के परिधानों का निर्वात करता है। वित्तीय वर्ष 2024-25 में यूरोपीय संघ के साथ भारत का कुल वस्तु व्यापार लगभग 136 अरब अमेरिकी डालर का था जिसमें नियत की हिस्सेदारी करीब 76 अरब अमेरिकी डालर थी। अब बहु- प्रतीक्षित मुक्त व्यापार समझौते पर मुहर लगने से निश्चित रूप से द्विपक्षीय व्यापार को एक नई दिशा मिलेगी और भारत के निर्यात कारोबार पर अमेरिकी शुल्क के प्रभाव को कम करने में भी काफी मदद मिलेगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 26-01-26

गणतंत्र की गरिमा

संपादकीय

देश आज अपना 77वां गणतंत्र दिवस मना रहा है। यह अवसर है, अपने गौरवशाली अतीत के स्मरण का, स्वतंत्रता सेनानियों व संविधान रचयिता पूर्वजों के प्रति श्रद्धा जताने का और उन सभी कर्मयोगियों का आभार जताने का, जिन्होंने बीते 76 वर्षों में भारतीय गणराज्य को दुनिया की पहली कतार में पहुंचाने में अपना योगदान दिया है। यह सफर आसान नहीं रहा। एक गणतंत्र के रूप में हमने जब अपना पहला कदम बढ़ाया था, तब देश की आबादी करीब 36 करोड़ थी, आज यह 140 करोड़ से ऊपर है। तब सदियों के शोषण और दमन से मुक्त हुए देश ने लगभग शून्य से शुरुआत की थी। हमारे कर्णधारों के सामने 36 करोड़ लोगों को दो वक्त भर भेट भोजन मुहैया कराने की गंभीर चुनौती थी। देश बंगाल के दुर्भिक्ष को भूला न था । इसलिए सरकार ने अनाज के मामले में देश को आत्मनिर्भर बनाने का संकल्प लिया। भाखड़ा नांगल बांध जैसी कोशिशें शुरू हुईं और हमारे कर्मयोगी किसानों ने पहली पंचवर्षीय योजना से ही अनथक परिश्रम कर अगले कुछ दशकों में यह सफलता अर्जित कर ली। आज देश न सिर्फ 80 करोड़ लोगों को मुफ्त अनाज बांटने की स्थिति में है, बल्कि कई देशों को भी अन्न मुहैया करा रहा है।

भारतीय गणतंत्र की स्थापना के साथ राजनीतिक सत्ता सीधे जनता के हाथों में आ गई थी। तब से आज तक 18 बार जनता ने अपनी लोकप्रिय भारत सरकार चुनी है, मगर यह सवाल आज अपनी जगह कायम है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने शासकों और नागरिकों से जो अपेक्षाएं की थीं, क्या हम उन पर पूरी तरह खरे उतरे हैं? निस्संदेह, हम अपनी राजनीतिक स्थिरता, सत्ता के सफल हस्तांतरण, गरीबी उन्मूलन की दिशा में मिली सफलता पर गर्व कर सकते हैं, शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में हुई तरक्की पर भी कमोबेश संतोष जता सकते हैं, मगर हमारे संविधान निर्माताओं ने सबके लिए समान अवसर का जो सपना देखा था, उस दिशा में अब भी मंजिल दूर दिखती है। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ धर्म व जाति के संकीर्ण दायरों के टूटने और एक समतामूलक समाज के निर्माण का जो सपना देखा गया था, आज 80 प्रतिशत साक्षर हो चुका भारत इसकी ठोस आश्वस्ति नहीं दे रहा । धर्म व जाति की गोलबंदियां ज्यादा मजबूत होती दिखती हैं। हमारे गणतंत्र की कामयाबी में इसकी संस्थाओं की महती भूमिका रही है। स्वतंत्र न्यायपालिका, स्वायत्त निर्वाचन आयोग, जिम्मेदार विधायिका और आकाशधर्मा शिक्षा केंद्र दुनिया भर में भारतीय गणराज्य की कीर्ति के आधार स्तंभ रहे। इसलिए जब कभी विधायिका ने अपनी सीमाओं का अतिक्रमण किया, न्यायपालिका ने उसे संविधान दिखाकर

अपने कदम पीछे खींचने को बाध्य किया, जब न्यायपालिका की तरफ से ऐसी कोई सक्रियता दिखी तो विधायिका ने उसे आईना दिखाने का काम किया। दुर्योग से इन तमाम इदारों में 'गण' की आस्था कुछ कमजोर पड़ी है और यह भारतीय गणराज्य के लिए सुखद बात नहीं हो सकती। सबसे ज्यादा सवालों में तो इस समय देश का निर्वाचन आयोग है, जो गण के अधिकारों का प्रतिनिधि संगठन है। उसके 'मत के अधिकार' का संरक्षण इस संस्था की पहली पवित्र जिम्मेदारी है। सिर्फ चुनावों में मतदाताओं की भागीदारी गणराज्य को गौरवशाली नहीं बनाता, कमजोर से कमजोर मतदाता की संतुष्टि से वह महान बनता है। सुप्रीम कोर्ट का बार बार हस्तक्षेप बताता है कि चुनाव आयोग को अपनी कार्यशैली पर गौर करने की दरकार है। भारतीय गणराज्य की गरिमा अक्षुण्ण रखने के लिए यह बहुत जरूरी है।

Date: 27-01-26

संकट में ईरान

संपादकीय

ईरान में मानवाधिकारों के हनन के आरोप नए नहीं हैं, मगर ईरान इंटरनेशनल नामक न्यूज एजेंसी ने 8 और 9 जनवरी के विरोध-प्रदर्शन के दौरान जिस बड़े पैमाने पर लोगों के कत्ले आम का दावा किया है, वह हैरतनाक है। इस एजेंसी का कहना है कि इन दो दिन के अंदर ही वहां 36,500 से अधिक लोग सरकारी दमन में मारे गए। हालांकि, ईरान के खिलाफ पश्चिमी मीडिया में दुष्प्रचार की मुहिम पुरानी है, लेकिन खुद तेहरान ने उन प्रदर्शनों के दौरान यह आरोप लगाया था कि बड़ी संख्या में बाहरी लोगों ने घुसपैठ की है और मासूम लोगों का कत्ले आम किया है। इससे इस अंदेशे को बल मिलता है कि 36,500 की संख्या अतिरंजित भले हो, मगर वहां बर्बरता से विरोध को दबाया जा रहा है। उधर अमेरिका स्थित 'ह्यूमन राइट्स एक्टिविस्ट्स न्यूज एजेंसी' ने विरोध- प्रदर्शनों के दौरान कम से कम 5,137 मौतों की पुष्टि की है और 12,904 अन्य की जांच का दावा किया है। कुल मिलाकर, ईरान के हालात गंभीर बने हुए हैं। खुद ईरानी राष्ट्रपति मसूद पेजेशकियान ने जिस तरह अवाम के गुस्से को समझने की बात कही थी, उससे भी तस्दीक होती है कि यह सिर्फ पश्चिमी दुष्प्रचार का हिस्सा नहीं है।

यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि लंबे समय से कठोर आर्थिक प्रतिबंधों और इजरायल के साथ लगातार संघर्ष के कारण ईरान की माली हालत जर्जर हो चुकी है। इसका अंदाजा सिर्फ इस बात से लगाया जा सकता है कि वहां एक डॉलर की कीमत लगभग दस लाख 75 हजार रियाल (ईरानी मुद्रा) हो गई है। ईरानी लोगों की क्रय शक्ति जवाब देने लगी मध्यवर्ग की खाने-पीने की चीजें व इलाज का खर्च चुकाने की क्षमता खत्म हो रही है। मौजूदा जन- उबाल के पीछे इसी तबके का गुस्सा बताया जा रहा है। सवाल उठता है कि ऐसे बर्बर दमन से क्या लोगों के आक्रोश को दबाया जा सकता है? महिलाओं के खिलाफ मजहबी पुलिस की निर्मम कार्रवाइयों ने तेहरान के प्रति दुनिया के नजरिये को पहले ही बुरी तरह प्रभावित किया है। ऐसे में, इतनी बड़ी संख्या में अपने ही देशवासियों का तथाकथित कत्ले आम से उसके प्रति रही-सही सहानुभूति भी तिरोहित हो जाएगी।

ईरान का सबसे बड़ा संकट यह है कि उसकी सत्ता में बैठे लोग लंबे समय से अपनी सामाजिक समस्याओं का हल वैश्विक अदावत में तलाश रहे हैं। सामाजिक सुधार और आर्थिक पुनरोद्धार के कार्यक्रम चलाने के बजाय तेहरान सरकार का

ज्यादातर निवेश सुरक्षा मद में होता रहा है। पश्चिम से दुश्मनी बढ़ाकर ईरानी शासक यही सोचते रहे कि राष्ट्रवादी लहर के नीचे सारी शासकीय कमियां दब जाएंगी, मगर जिस तरह रह-रहकर वहां जन आक्रोश भड़क रहा है, इससे उसकी बाहरी सुरक्षा भी प्रभावित हो रही है। अमेरिका, इजरायल व पश्चिमी देशों की आंखों में उसका परमाणु कार्यक्रम खटकता रहा है। अब अमेरिका से जिस तरह तनाव बढ़ता जा रहा और वाशिंगटन विरोधी शक्तियां तेहरान को उकसाने में लगी हैं, वह एक खतरनाक रूप ले सकता है। तेहरान को यह समझना होगा कि एक छोटे अंतराल का युद्ध भी उसके खोखलेपन को उजागर कर सकता है, इसलिए धमकी की मुद्रा के बजाय उसे शांति का रुख अपनाना चाहिए। ईरान के लिए इस समय सबसे जरूरी यह है कि बातचीत के जरिये वह न सिर्फ युद्ध की किसी आशंका को टाले, बल्कि अपनी घरेलू नीतियों में मानवाधिकारों का सम्मान करना सीखे। घर ही अशांत रहा, तो बाहरी सुरक्षा कितनी कारगर होगी ?

Date: 27-01-26

जांच एजेंसियों का यूं टकराना ठीक नहीं

विभूति नारायण राय, (पूर्व आईपीएस अधिकारी)

सर्वोच्च न्यायालय ने 19 जनवरी, 2026 को दिए एक महत्त्वपूर्ण फैसले में कहा है कि पुलिस समेत राज्यों की अन्य एजेंसियों को केंद्रीय कर्मचारियों के विरुद्ध 'प्रिवेंशन ऑफ करप्शन ऐक्ट' या किसी दूसरे कानून के तहत दाखिल मुकदमों में चार्जशीट लगाने के पहले सीबीआई से अनुमति लेने की जरूरत नहीं है।

देश का संविधान संघात्मक ढांचे की परिकल्पना करता है, जिसमें केंद्र और राज्यों के अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से बंटे हुए हैं। कानून-व्यवस्था, कुछ अपवादों को छोड़कर राज्यों के अंतर्गत आती है और इसीलिए उसे लागू करने वाली एजेंसियां भी उन्हीं के अधिकार क्षेत्र में हैं। 1967 तक जब आमतौर से केंद्र और राज्यों में एक ही दल की सरकारें होती थीं, इस व्यवस्था से कोई बड़ी समस्या नहीं आई, पर अब जब एक दर्जन से अधिक राजनीतिक दल केंद्र और राज्यों में मिली-जुली या अकेले दम पर सरकारें चला रहे हैं, तब बार बार ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो रही हैं कि सर्वोच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़ रहा है।

यह समझना दिलचस्प होगा कि ऐसी स्थिति ही क्यों पैदा हुई? इसके लिए हमें केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) के इतिहास को खंगालना पड़ेगा । सीबीआई की पूर्वज 'दिल्ली स्पेशल पुलिस एस्टेब्लिशमेंट' की स्थापना 1946 में एक विशेष कानून के तहत हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान ठेकों और आपूर्ति में बड़े पैमाने पर हुए घोटालों की जांच करना था। इसकी जांच के दायरे मुख्य रूप से केंद्र सरकार और केंद्र शासित इलाकों के सरकारी कर्मचारी आते थे। आजादी के बाद भारतीय राज्य में अभूतपूर्व आर्थिक गतिविधियां शुरू हुई। बड़े पैमाने पर सरकारी मशीनरी का विस्तार हुआ। पंचवर्षीय योजनाओं के जरिये सार्वजनिक क्षेत्रों में विशाल निवेश हुए और साथ में अरबों रुपये सरकारी खरीद-फरोख्त में खर्च किए जाने लगे। इनके अलावा सड़क, रेलवे, हवाई अड्डों, बंदरगाहों या इस्तेमाल में आने वाली विभिन्न इमारतों जैसी आधारभूत संरचनाओं का बड़े पैमाने पर निर्माण शुरू हो गया।

यह सारा विकास अपने साथ ऐसा अभिशाप लेकर आया, जिसकी शुरू में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यह था भ्रष्टाचार का वह जिन्न, जो एक बार बोतल से बाहर निकला, तो फिर उसे वापस बोतल में बंद कर पाना किसी सरकार के लिए संभव न हो सका। मूंदड़ा कांड (1957-58) आजादी के बाद का पहला बड़ा वित्तीय घोटाला था, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी जीवन बीमा निगम लिप्त थी और जिसके चलते तत्कालीन वित्त मंत्री टीटी कृष्णामाचारी को इस्तीफा देना पड़ा था। इसके बाद तो लगातार बड़े घोटाले सामने आते रहे और प्रभावशाली लोगों की उनमें संदिग्ध लिप्तता आरोपित होती रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार की बढ़ती प्रवृत्ति से लड़ने के लिए सन् 1963 में सीबीआई की स्थापना हुई और इसके गठन के लिए दिल्ली स्पेशल पुलिस एस्टेब्लिशमेंट ऐक्ट' को ही आधार बनाया गया। जल्द ही इस संगठन ने अपनी विश्वसनीयता कायम कर ली और आमतौर पर सामान्य जन या अदालतें राज्य पुलिस बलों से हटकर सीबीआई से जांच कराने के आदेश देने लगीं। चूंकि कानून-व्यवस्था राज्य के अधिकार क्षेत्रों में है, अतः कानूनन यह जरूरी था कि किसी राज्य के दायित्व वाले मसलों में विवेचना करने के पहले सीबीआई राज्य सरकार की इजाजत ले । शुरू में समस्या नहीं आई। अधिकांश राज्यों ने एकमुश्त मंजूरी दे रखी थी। दिक्कत तब आनी शुरू हुई, जब अलग-अलग दलों की सरकारें केंद्र में आई और सीबीआई के दुरुपयोग के आरोप लगने शुरू हो गए। सर्वोच्च न्यायालय को भी उसे 'तोता' कहना पड़ा। इस बीच कई राज्यों ने अपनी मंजूरी वापस ले ली, अर्थात अब सीबीआई को जांच शुरू करने के पहले संबंधित राज्य सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है और इसे हासिल करना उत्तरोत्तर मुश्किल होता गया है।

इस स्थिति से उबरने के लिए केंद्र ने डीआरआई, ईडी व एनआईए जैसी दूसरी अनुसंधान एजेंसियों का उपयोग शुरू कर दिया। इन संगठनों को किसी जांच के लिए संबंधित राज्य सरकारों से पूर्वानुमति की वैधानिक आवश्यकता नहीं है। एनआईए को तो उसका ऐक्ट ऐसे अधिकार भी देता है कि वे किसी मामले को राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ा मसला बताकर उसकी तफ्तीश राज्य पुलिस से अपने हाथों में ले सकती है। इन एजेंसियों के दुरुपयोग की भी शिकायतें खूब मिलने लगी हैं। प्रायः देखा गया है कि हर चुनाव के पहले ये सक्रिय हो जाती हैं और अदालतों व मीडिया में उनके खिलाफ शिकायतों की बाढ़ सी आ जाती है।

इसी परिप्रेक्ष्य में सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले को देखना पड़ेगा। पिछले दिनों पश्चिम बंगाल और झारखंड समेत कई प्रदेशों ने केंद्रीय एजेंसियों से जुड़े अधिकारियों के खिलाफ कुछ मुकदमे कायम किए हैं, जो मुख्य रूप से इन प्रदेशों के राजनेताओं या नौकरशाहों से संबंधित विवेचनाओं में शिकायतकर्ता या गवाहों के मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित हैं। पहले भी केंद्रीय एजेंसियों के छापों के दौरान राज्य पुलिस द्वारा उन्हें सुरक्षा प्रदान करने में आनाकानी की गई है। और तो और उनके द्वारा मदद की गुहार लगाने पर भी उपेक्षात्मक रवैया अपनाया गया।

किसी ताकतवर नेता या नौकरशाह के परिसर पर छाप के दौरान जिस तरह पुलिस के अपने हित में दुरुपयोग की प्रवृत्तियां बढ़ी हैं, उसमें पूरी आशंका है कि आने वाले दिनों में राज्य और केंद्र की एजेंसियों के बीच टकराव बढ़ेगा ही। इस आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता कि भविष्य में अब जब भी कोई केंद्रीय एजेंसी किसी प्रदेश के ताकतवर व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करेगी, उसे संबंधित राज्य की पुलिस द्वारा अपने अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई के लिए भी तैयार रहना होगा।

एक संघीय व्यवस्था के लिए यह स्थिति किसी खतरे की घंटी की तरह है। क्या हम चाहेंगे कि नौबत यहां तक आए कि केंद्र और किसी राज्य की पुलिस दुश्मन देशों की सेनाओं की तरह एक-दूसरे के सामने खड़ी दिखें? सुप्रीम कोर्ट का निर्णय सांविधानिक रूप से तो सही हैं, पर आने वाले दिनों में इसके चलते ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं, जिनसे निपटने के लिए संविधान में बड़े संशोधन करने पड़ेंगे। इस गंभीर संकट से बचने के लिए जरूरी है कि हमारे राजनेता ऐसे अवसरों पर ज्यादा उत्तरदायित्व पूर्ण प्रतिक्रिया दें। इसके लिए पहले इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ना होगा कि क्या वे ऐसे प्रौढ़ व्यवहार के लिए तैयार होंगे ?